।।श्री कृष्ण: शरणं मम।।

बंधन और मोक्ष

मौसी आई थी उस दिन। उन्हें देखकर एक बार मैं तो अवाक् रह गई। फूल सी खिली रहने वाली गोल मटोल मौसी न जाने कैसी तो हो गई थी। लेकिन मौसी के अंग अंग से उत्साह फूट रहा था। हंसी, मजाक, ठिठोली के बीच कभी शापिंग का प्रोग्राम बन रहा था, कभी पिकनिक का। मैं गौर से देख रही थी मौसी को। इन सारे हंसी ठठ्ठों में छुपा विषाद मेरी नजरों से बच नहीं पाया। रात मैंने मौसी को कुदेरा- 'मौसी तुम कैसे बनाए रख पा रही हो अपने बचपन को अब तक? मजाक करते करते बीच में क्षण भर को सीरियस हो जाना, फिर हंसी पर उतर आना..... क्या है यह सब?'

मौसी फूट पड़ी। आज उन्हें समझ में आया कि अब मैं बड़ी हो गई हूं, सयानी और समझदार हो गई हूं। मौसी ने अपनी जिंदगी परत दर परत उधेडनी आरम्भ की।

नागपुर के उन्मुक्त वातावरण में पली मौसी रायगढ के पास एक कस्बेनुमा शहर में रहती है। ससुर जी बडे समाज सेवी है और बड़ी इज्जत है उनकी। मौसा जी डॉक्टर है और अपनी प्रैक्टिस में व्यस्त रहते हैं। हवेली नुमा घर है। बडे से परिवार के बीच रहती है मौसी।

मौसी ने बताया- बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है रे, प्रतिष्ठित व्यक्ति की पतोहू होने के कारण। घर के बाहर निकलो तो बीसों आंखों की नजर रहती है। और समाज के रीति रिवाज..... बाप रे! इनको निभाते निभाते तो लगता है कि मेरा 'मैं' ही कहीं नहीं रहा। कुछ भी अपनी मर्जी का नहीं कर सकती। घुटन होने लगती है मुझे दकियानूसी विचारधारा के लोगों की सुनते सुनते। परिवार में इतने लोग है कि एक की खुशी के लिए कुछ करो तो कम से कम दूसरे दो तो जरूर मुंह फुला लेते हैं। कभी कभी तो लगने लगता है कि वेश्या से भी बदतर है जीवन मेरा। बंधन..... बंधन ..... बंधन। कैसे छुटकारा मिले ऐसे जीवन से? बहुत असहनीय हो जाता है तब तेरे मौसा जी से कहती हूं- चलिए कुछ दिनों के लिए किसी हिल स्टेशन चलें। लेकिन उन्हें अपने रोगियों से फुर्सत कहां। यहां आ कर लग रहा है कि पिंजरे से निकल कर खुले आकाश में आ गई हूं। मन

करता है पंख लगा कर उड़ूं तो क्षितिज को नाप आऊं। जो आनन्द मुक्ति में है वह कहीं नहीं। बंधन न हो तो फूस की झोपड़ी भी सुखदाई है।'

मौसी की बातों ने झंझावात पैदा कर दिया मेरे मस्तिष्क में। मैंने आज तक कभी नहीं समझा था कि धन, मान, प्रतिष्ठा आदि तो सोने के पिंजड़े हैं जिनमें मौसी जैसे लोग कैद रहते हैं और मुक्ति के लिए छटपटाते रहते हैं।

क्या है बंधन? क्या है मुक्ति? मौसी जिन बंधनों से घुट रही है क्या वे पूरी तरह अनुचित हैं? यदि हैं भी तो उसके लिए इनसे छूटने का क्या उपाय है? मैं अपने चारों ओर नजर डाल कर हर प्रकार के बंधन की गणना कर रही थी और हर बंधन का विश्लेषण कर उससे मुक्त होने के उपाय सोचना चाह रही थी। किंतु निंदिया रानी ने अपने पाश में बांध लिया मुझे। बंधन..... मुक्ति, बंधन..... मुक्ति, सोचते सोचते कब आंख लग गई पता ही नहीं चला।

सुबह नींद पूरी तरह टूटी भी नहीं थी कि कानों में चिर परिचित स्वर पडे। ऐसे मीठे मानों एक एक शब्द को अमृत कलश में गोता लगवाया गया हो। गीता मैय्या छेड़ रही थी स्वर- **दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबंधयासुरी मताः।** दूसरी पंक्ति सुनने जितना कौन रुके? मैंने बिस्तर से छलांग मारी और जा खड़ी हुई मैय्या के पास। मां ने सदा की भांति मधुर स्मित से मेरा स्वागत किया। अपने एक दम निकट आसन बिछाया। मुझे बिठाया और बोली- 'आज फिर जरूर कोई खास बात है जो मेरी रानी ने सो कर उठने के बाद आंखें भी नहीं धोई।'

मैं- 'छोड़ो वह सब मम्मी। पहले बताओ तुम क्या गा रही थी?'

मां- 'यह बंधन और मोक्ष की गाथा है। मैं जो गा रही थी उसका अर्थ है कि दैवी सम्पत्ति मुक्ति प्रदान करती है और आसुरी सम्पत्ति बंधन।'

मैं- 'मां, मैंने तो दो प्रकार की सम्पत्ति के बारे में इकॉनामिक्स में पढा है। चल सम्पत्ति और अचल सम्पत्ति। मोटे तौर पर कहें तो रुपया और जमीन जायादाद। अपने पास का रुपया दैनिक जीवन में काम आता है। जमीन जायदाद मुसीबत में काम आती है। और सम्पत्ति का सम्बन्ध तो भोग से होता है। तुम तो सम्पत्ति भी दैवी और आसुरी बता रही हो और उनका सम्बन्ध भी मोक्ष और बंधन से जोड़ रही हो। क्या है दैवी सम्पदा? क्या है आसुरी सम्पदा?'

मां- 'बेटी तुमने जो चल और अचल सम्पत्ति की बात कही वे दोनों ही चंचल हैं। काम कम आते हैं धोखा अधिक देते हैं। वास्तविक सम्पत्ति तो वे गुण हैं जो मनुष्य को ऊंचा उठाते हैं और हमेशा उसका साथ निभाते हैं। इन्हें ही दैवी सम्पदा कहते हैं।'

मैं- 'अच्छा! कौन कौन से हैं ये गुण?'

मां- 'छब्बीस दैवी गुण हैं।'

मां आगे कहती तब तक मैंने उनके हाथों में वीणा पकड़ा दी थी। स्वर गूंज उठा–

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीर चापलम्।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचम् अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

मैं– 'और आसुरी गुण?'

मां– 'आसुरी गुण पांच हैं– दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध और कडवी वाणी।'

मैं– 'लेकिन मां अपने ये गुण या अवगुण कैसे मुक्ति या बंधन पैदा कर सकते हैं? बंधन तो दूसरे पैदा करते हैं। हमारे देश को अंग्रजों ने गुलाम बना रखा था। उनसे हमें सन् सैंतालीस में मुक्ति मिल गई। मौसी को देखो, समाज और परिवार के बंधन में पडी है बेचारी। उसी के बारे में तो मैं सोच रही थी कि आपकी आवाज कानों में पड़ी।'

मां– 'तो यह बात है? देखो, पहले तो यह समझो कि बंधन किसे कहते हैं और मुक्ति किसे?'

मैं– 'यह लो! इसमें क्या समझना? दूसरों की मर्जी से चलने की मजबूरी को बंधन कहते है और अपनी मर्जी से यानि जो जी चाहे करने की छूट को मुक्ति कहते हैं।'

मां– 'सच तो यह है मेरी बिटिया, कि जो जी चाहे वह न करना ही मुक्ति है।'

मैं– 'वाह मम्मी वाह! सीधी सी बात को उल्टा कहना तो कोई आपसे सीखे।'

मां कभी मेरे इतराने का बुरा नहीं मानती। वैसे ही मुस्कुराती हुई बोली– 'अच्छा मान लो तुम्हारे चार शत्रु है जो तुम्हें गुलाम बनाए हुए हैं। एक तुम्हारे घर में, दूसरा मुहल्ले में, तीसरा दिल्ली में ओर चौथा अमेरिका में। कौन सबसे बड़ा शत्रु है यानि कौन सबसे खतरनाक है इसकी पहचान तुम कैसे करोगी?'

कुछ क्षण विचार करने के बाद मैंने कहा– 'मां, जो सबसे ज्यादा नजदीक हो और सबसे ज्यादा समय तक मुझे बंधन में रखे वही सबसे बड़ा शत्रु।'

मां– 'और मुक्ति की लडाई शुरुआत तुम अपने पास वाले शत्रु से करोगी कि समुन्दर पार बैठे शत्रु से?'

मैं- 'यह भी भला कोई पूछने की बात हुई? जो शत्रु हर समय सर पर सवार है उससे छूटे बिना मैं दूर वालों तक पहुंचूंगी ही कैसे? मौसी को ले लो, पहले तो उसे अपने घरवालों के बंधन से ही छुटकारा पाना होगा न। कभी इसकी मर्जी, कभी उसकी मर्जी। घुट गई बेचारी। अपने मन का कर ही नहीं पाती।'

मां- 'दूसरों की मर्जी से चलना दूसरों की गुलामी, तो अपने मन मर्जी से चलना अपने मन की गुलामी नहीं क्या?'

अचानक बिजली कौंध गई मेरे मस्तिष्क में। उसकी रोशनी में मैय्या के शब्द स्पष्ट समझ में आने लगे। **जो जी चाहे वह न करना ही मुक्ति है।** हमारा 'जी', हमारा 'मन' ही तो हुआ हमारा सबसे नजदीक का शत्रु। यानि पहली लडाई इसी से .....

मैं- 'मां, एक बार फिर से कहो तो। तुम क्या कह रही थी बंधन और मुक्ति के बारे में।'

मां- 'मैं कह रही थी कि जो **'जी'** चाहे वह करना मुक्ति नहीं। जो जी चाहे वह किए बिना भी प्रसन्न रहना ही मुक्ति है।'

मैं- 'मम्मी, तुम्हारी पहेली अब कुछ कुछ समझ में आने लगी है। लेकिन नई पिक्चर देखने को जी चाहता है तो बिना देखे प्रसन्न कैसे रहूं? यह जोड-घटाव कर नहीं पा रही। जरा बता दो न।'

मां- 'समझो कि आज नई पिक्चर लगी है और तुम्हारा मन कर रहा है कि आज ही उसे देखा जाए। पापा ना कर देते है और तुम रोने लगती हो कि पापा कभी मेरी बात नहीं सुनते, हमेशा बांध कर रखना चाहते है घर में। लड़ झगड़ कर सहेली के साथ पिक्चर देखने चली जाती हो। पापा के बंधन को तो तोड़ देती हो लेकिन क्या तुमने कभी सोचा कि तुम्हारे मन ने तुम्हें कैसा गुलाम बना रखा है कि उसकी मर्जी के अनुसार चले बिना तुम तीन घंटे भी नहीं रह सकती! रुला रुला कर मार डालता है तुम्हें। सामाजिक और पारिवारिक बंधनों से अधिक भयंकर है अपने आप का बंधन। इसी लिए मैं कहती हूं- अपनों से बचो और अपने से बचो।'

मैं- 'लो फिर एक पहेली। अपनों से बचो और अपने से बचो। क्या मतलब है इसका

मां- विचार करके देखो कि हमलोग दिन भर किन किन बातों में फंसे रहते हैं। अपनों की सुरक्षा की चिंता, उनके सुख-सुविधा की चिंता, अपनी वस्तुओं को सजाने और सहेजने का प्रयत्न, अपने आराम की वस्तुएं जुटाने की कोशिश, अपनी सुंदरता बनाए रखने की मशक्कत और अपनी मान, बड़ाई, प्रसिद्धि की कामना। और अपनों से अपनी आशाएं पूरी नहीं होती तो उसका रोना धोना। ये ही सारी आत्मिक जंजीरे हैं जिन्हें हमें तोड़ डालना है।

मैं- 'हां मां। मैंने भी अनुभव किया है। जब मैं मोपेड लेना चाह रही थी तो उस मोपेड ने अपने आने के पहले ही सैकड़ों बार मुझे सुखी और दुखी कर डाला था। एक क्षण तो मोपेड का सपना मुझे इतना सुहाना लगता कि मैं मस्त हो जाती और दूसरे ही क्षण सोचती- पापा को कहूंगी तो वे बिलकुल नहीं मानेंगे। मोपेड नहीं कड़वी डांट ही मिलेगी। और यह विचार ही मुझे इतना दुखी कर देता था कि पापा ही नहीं सारी दुनिया मुझे दुश्मन नजर आने लगती थी। आज आप से बात करके मुझे समझ आया कि हमारे विचारों के बंधन कितने खतरनाक हैं।'

मां- 'बहुत अच्छे। थोडा और चलो इसी दिशा में।'

मैं- 'मां, सबसे बड़ा तो हमारे स्वभाव का बंधन है। हम अपने स्वभाव के वश में बहुत अधिक रहते हैं और दूसरों का स्वभाव ठिकाने लगाना चाहते हैं। अपने में तो अच्छाई देखते रहते हैं और दूसरों में बुराई। और मम्मी, क्रोध के तो बहुत ज्यादा ही वश में हो जाती हूं मैं। फिर तो वाणी से क्या क्या अंट शंट निकल जाता है कुछ पता ही नहीं चलता।'

मां- 'ठीक सोचा तुमने। अब देखो आसुरी गुणों की लिस्ट- दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध और कड़वी वाणी। ये ही पांच तो बताए थे मैंने। और छब्बीस दैवी हथियार हैं। अब तुम्हारा होम वर्क यह है कि तुम देखो कि कौन सा बंधन किस गुण को बढाने की साधना करने से कटेगा। मेरा यकीन मानो, ये गुण जीवन में दस प्रतिशत भी उतर गए तो तुम स्वयं आश्चर्यचकित रह जाओगी..

मैं- 'और बोलूंगी, अरे! मैंने तो सोचा ही नहीं था कि जीवन इतना बंधन रहित, इतना उन्मुक्त भी हो सकता है। अच्छा मम्मी, बाई बाई। अगली बार आपसे बतियाने आऊंगी तो देख लेना कि आपकी रानी बिटिया ने आपकी बात कैसे बांधी है हृदय में।

प्यार और आशीर्वाद बरसाती मैय्या की आंखें आज भी मेरा सम्बल बनी हुई हैं।

*****